



प्रकाशन हेतु अनुमोदित

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर

डब्ल्यू.पी.एस. नं. 1227 ऑफ 2016

1. सुरेन्द्र रामटेके, पुत्र स्व. रामचरण रामटेके, उम्र लगभग ४३ वर्ष, याचिकाकर्ता कांस्टेबल के पद पर कार्यरत है और पुलिस लाइन, राजनांदगांव, जिला राजनांदगांव, छत्तीसगढ़ में कार्यरत/संलग्न है।
2. सुभाष मराबी, पुत्र लमना सिंह, उम्र लगभग 46 वर्ष याचिकाकर्ता कांस्टेबल के पद पर कार्यरत है और पुलिस लाइन, राजनांदगांव, जिला राजनांदगांव, छत्तीसगढ़ में कार्यरत/संलग्न है।
3. विजय सिंह चौहान, पुत्र जगमोहन सिंह चौहान, उम्र लगभग 43 वर्ष, याचिकाकर्ता कांस्टेबल के पद पर कार्यरत है और पुलिस लाइन, राजनांदगांव, जिला राजनांदगांव, छत्तीसगढ़ में कार्यरत/संलग्न है।
4. रामकुमार ध्रुव, पुत्र मोहन सिंह ध्रुव, उम्र लगभग 43 वर्ष, याचिकाकर्ता कांस्टेबल के पद पर कार्यरत है और पुलिस लाइन, राजनांदगांव, जिला राजनांदगांव, छत्तीसगढ़ में कार्यरत/संलग्न है।
5. रमाकांत उपाध्याय, पुत्र हीरा लाल उपाध्याय, उम्र लगभग 49 वर्ष, याचिकाकर्ता कांस्टेबल के पद पर कार्यरत है और पुलिस लाइन, राजनांदगांव, जिला राजनांदगांव, छत्तीसगढ़ में कार्यरत/संलग्न है।

----- याचिकाकर्तागण

बनाम

1. छत्तीसगढ़ राज्य, सचिव, गृह एवं पुलिस विभाग, मंत्रालय, महानदी भवन, नया रायपुर, छत्तीसगढ़।
2. पुलिस महानिदेशक, छत्तीसगढ़ राज्य, पुलिस मुख्यालय P.H.Q., नया रायपुर, जिला रायपुर, छत्तीसगढ़।



3. पुलिस महानिरीक्षक, दुर्ग रेंज, दुर्ग जिला दुर्ग, छत्तीसगढ़।
4. पुलिस अधीक्षक, राजनांदगांव, जिला राजनांदगांव छत्तीसगढ़।

-----उत्तरवादीगण

याचिकाकर्तागण की ओर से:- श्री आर.के.केशरवानी, अधिवक्ता।

राज्य/उत्तरवादीगण की ओर से:- श्री राहुल तामस्कर, शासकीय अधिवक्ता।

माननीय न्यायमूर्ति श्री गौतम भादुड़ी

ऑर्डर ऑन बोर्ड

12/08/2024

1. इस याचिका में पुलिस महानिरीक्षक, दुर्ग द्वारा याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर अपील में पारित दिनांक 03.03.2015 (अनुलग्नक पी-1) के आदेश को चुनौती दी गई है, जिसके तहत अपीलीय प्राधिकारी ने याचिकाकर्तागण की सेवा बहाल करते हुए पिछला वेतन देने से इन्कार कर दिया और सेवा से बर्खास्तगी के प्रमुख दंड के आदेश को संशोधित कर दिया और इसके बजाय याचिकाकर्तागण के वेतनमान में एक वर्ष के लिए वेतन वृद्धि रोकने का प्रमुख दंड लगाया, जो सेवा में उनकी पुनः प्रवेश की तारीख से असंचयी प्रभाव से लागू नहीं होगा। अपीलीय प्राधिकारी ने "काम नहीं तो वेतन नहीं" के सिद्धांत को लागू करते हुए निर्देश दिया कि निलंबन के तहत बिताई गई अवधि को बर्खास्तगी की तारीख से उनके आगमन की तारीख तक सेवा से बाहर बिताई गई अवधि के रूप में गिना जाएगा। दिनांक 03.03.2015 के आदेश (अनुलग्नक पी-1) को पुलिस महानिदेशक (डीजीपी) के समक्ष दायर दया याचिका में पुनर्विलोकन के लिए रखा गया और दिनांक 10.03.2016 के आदेश (अनुलग्नक पी-2)



द्वारा डीजीपी ने अपीलीय प्राधिकारी के आदेश की पुष्टि की, और दया याचिका को खारिज कर दिया, जिसे भी इस याचिका में चुनौती दी गई है।

2. याचिकाकर्ता के अनुसार, 17/18 सितम्बर 1996 की मध्य रात्रि में जब याचिकाकर्ता पुलिस स्टेशन, मानपुर में पदस्थ थे, लगभग 50-60 गैरकानूनी लोगों (नक्सलियों) ने बंदूकों से लैस होकर मानपुर पुलिस स्टेशन पर हमला किया, जिसका उद्देश्य पुलिस कर्मियों की हत्या करना तथा पुलिस स्टेशन में मौजूद हथियार और गोला बारूद लूटना था। उस दिन याचिकाकर्ता अपनी ड्यूटी पूरी करने के बाद पुलिस स्टेशन में ड्यूटी पर थे। हमले के दौरान नक्सलियों ने एक पुलिस कर्मी को बंधक बना लिया हथियार लूट लिए। परिणामस्वरूप, पुलिस स्टेशन में ड्यूटी पर मौजूद लोगों तथा वर्तमान याचिकाकर्तागण, जो ड्यूटी से छुट्टी लेकर पुलिस बैरक में आराम कर रहे थे, के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया गया। घटना के परिणामस्वरूप, पुलिस स्टेशन में ड्यूटी पर तैनात कर्मियों की सेवाएं भारत के संविधान के अनुच्छेद 311, खंड 2 (बी) के तहत बिना किसी जांच के समाप्त कर दी गई, जबकि वर्तमान याचिकाकर्ताओं के खिलाफ विभागीय जांच शुरू की गई।
3. याचिकाकर्ताओं सहित सभी दोषियों के खिलाफ संयुक्त जांच की गई और सभी को आरोपों में दोषी पाया गया और दिनांक 24.10.1997 के आदेश (अनुलग्नक पी-7) द्वारा सभी याचिकाकर्ताओं को सेवा से बर्खास्त कर दिया गया। मुख्य आरोप यह था कि याचिकाकर्ताओं के कृत्य से आम जनता के सामने छिपी हुई अभिव्यक्ति हुई है, जिससे पुलिस विभाग की छवि धूमिल हुई है। उक्त आदेश बालाघाट रेंज के पुलिस उप महानिरीक्षक के समक्ष अपील का विषय था, जिसे 30.03.1999 को अनुलग्नक पी-8 के अनुसार खारिज कर दिया गया था। उक्त आदेश से व्यथित होकर याचिकाकर्ता ने राज्य प्रशासनिक न्यायाधिकरण के समक्ष मूल



आवेदन (OA) पेश किया। इस बीच, चूंकि SAT समाप्त कर दिया गया था, इसलिए मामले उच्च न्यायालय में स्थानांतरित कर दिये गये और याचिकाकर्ताओं द्वारा पेश किए गए OA को डब्लू.पी.एस.क्रं. 1830/2005, डब्लू.पी.एस.क्रं.1825/2005, डब्लू.पी.एस.क्रं. 1830/2005 और डब्लू.पी.एस. क्रं. 584/2014 के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। अंततः उक्त रिट याचिकाओं पर 08 सितंबर 2014 को निर्णय हुआ (अनुलग्नक पी-9) जिसके तहत इस न्यायालय ने माना कि अपीलीय आदेश में कोई कारण नहीं है और न ही यह वैधानिक आवश्यकता का अनुपालन दर्शाता है, इस प्रकार, अपील को नए सिरे से निर्णय लेने के लिए मामले को अपीलीय प्राधिकारी को वापस भेज दिया गया।

4. इस न्यायालय के दिनांक 08.09.2014 के आदेश के अनुसरण में याचिकाकर्ताओं ने अपील पर नए सिरे से सुनवाई के लिए अनुलग्नक पी-10 के माध्यम से पुलिस महानिदेशक के समक्ष अभ्यावेदन दायर किया। उक्त अपील का निर्णय दिनांक 03.03.2015 के आदेश (अनुलग्नक पी-1) द्वारा किया गया, जिसके तहत याचिकाकर्ताओं को बिना बकाया वेतन दिए सेवा में बहाल कर दिया गया और इसके अलावा बर्खास्तगी के प्रमुख दंड को गैर-संचयी प्रभाव के साथ एक वर्ष के लिए एक वेतन वृद्धि रोकने के प्रमुख दंड में घटा दिया गया और "कोई काम नहीं तो कोई वेतन नहीं" के सिद्धांत पर ऐसी अवधि के लिए कोई बकाया वेतन नहीं दिया गया। दिनांक 03.03.2015 के आदेश का संचालन पैरा यहां प्रासंगिक है और सुविधा के लिए नीचे उद्धृत किया गया है:

"सभी अपीलार्थीगण द्वारा प्रस्तुत अपील के अंत में स्वयं की पारिवारिक कठिनाईयों एवं अच्छे सेवा रिकार्ड का लेख किया गया है। अस्तु प्रकरण में अधिरोपित आरोप की प्रमाणिकता तथा घटित घटना के घटनाक्रम को दृष्टिगत रखते हुए प्रकरण में सहानुभूतिपूर्वक विचार कर मानवीय आधार पर लंबी सेवा अवधि को दृष्टिगत रखते हुए व गुण-दोष



के आधार पर पुलिस अधीक्षक, राजनांदगांव द्वारा पारित आदेश क्रमांक- पुअराज/वि.जांच/16/96/219/97 दिनांक 24.10.97 के माध्यम से सेवा से बरखास्त किए जाने संबंधी दंडादेश को निरस्त किया जाता है। चूंकि अपीलार्थी प्रधान आरक्षक क्रमांक 323 स्वर्गीय श्री राधेश्याम, थाना मानपुर, जिला राजनांदगांव की मृत्यु तिथि दिनांक 17.07.2010 को हो चुकी है। अतः उनके लिए दिनांक 16.07.2010 को वह सेवा में बहाल हुए यह मान्य किया जाता है। अपीलार्थी प्र.आर. क्रमांक 323 स्वर्गीय श्री राधेश्याम, आरक्षक क्रमांक 65 त्रिभुवन दास, आरक्षक क्रमांक 48 सुरेन्द्र रामटेके, आरक्षक क्रमांक 250 विजय सिंह, आरक्षक क्रमांक 769 रमाकांत, आरक्षक क्रमांक 59 रामकुमार, आरक्षक क्रमांक 174 रामलाल एवं आरक्षक क्रमांक 833 सुभाष चन्द्र सभी थाना मालपुर, जिला राजनांदगांव को सेवा में बहाल किया जाकर उनके विरुद्ध प्रमाणित पाए गए आरोप के लिए "वेतनमान में एक वेतनवृद्धि के बराबर की राशि एक वर्ष तक की अवधि के लिए असंचयी प्रभाव से कमी किये जाने" की दीर्घशक्ति (Major Penalty) से दण्डित किया जाता है, जो सभी अपीलार्थीगण के सेवा में पुनः आमद देने के दिनांक से प्रभावी होगा। सभी अपीलार्थीगण द्वारा निलंबन में व्यतीत की गई निलंबन अवधि को निलंबन में ही शुमार किया जाता है एवं पुलिस अधीक्षक, राजनांदगांव के आदेश दिनांक 24.10.97 के अनुसार सेवा से बरखास्त किए जाने के दिनांक से आमद दिनांक तक की सेवा से बाहर बिताई गई अवधि को "काम नहीं वेतन नहीं" (No Work No Pay) के तहत निराकृत की जाती है।

(प्रदीप गुप्ता)
पुलिस महानिरीक्षक

उक्त आदेश पुलिस महानिदेशक के समक्ष दया याचिका में पुनरीक्षण का विषय था। दया याचिका पर विचार करते हुए, डीजीपी ने माना कि याचिकाकर्ताओं के खिलाफ आरोप पूरी तरह से साबित हो चुके हैं, क्योंकि उन्होंने अपने कर्तव्य के अनुरूप नक्सलियों का मुकाबला नहीं किया और कर्तव्य से विमुख होकर उन्होंने कायरता का परिचय दिया, जिससे विभाग की बदनामी हुई, इसलिए अपीलीय प्राधिकारी द्वारा दी गई सजा उचित समझी गई और याचिकाकर्ताओं द्वारा 10.03.2016 को दायर दया याचिका को खारिज कर दिया। इसलिए 03.03.2015 (अनुलग्नक पी-1) और 10.03.2016 (अनुलग्नक पी-2) के दोनों आदेश इस याचिका में चुनौती के अधीन है।



5(i) याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि अपीलीय प्राधिकारी का आदेश इस कारण से त्रुटिपूर्ण है कि अपीलीय प्राधिकारी छत्तीसगढ़ सिविल सेवा(वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम 1966 (संक्षेप में "1966 के नियम) के नियम 15 के प्रावधानों को ध्यान में रखने में विफल रहा है क्योंकि जांच अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा स्वयं नहीं की गई थी बल्कि इसे किसी अन्य अधिकारी को सौंप दिया गया था। उन्होंने 11.05.2018 को निर्णीत डब्लू.पी.एस. क्रमांक 4539/2012 (लच्छन राम गिरि बनाम छत्तीसगढ़ राज्य) में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित एक सिद्धांत पर भरोसा किया और प्रस्तुत किया कि पक्षपात के आरोप से बचने के लिए प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की नियुक्ति आवश्यक थी।

5(ii) उन्होंने आगे कहा कि कर्मचारियों का दूसरा समूह, जो उसी घटना में पक्षकार है, उन्हें एसएटी द्वारा पिछले वेतन के साथ बहाल कर दिया गया है, इसलिए एक ही घटना में सह-अपराधियों की संलिप्तता की तुलना करते समय याचिकाकर्ताओं पर लगाई गई सजा भेदभावपूर्ण नहीं होनी चाहिए। उन्होंने नियम 1966 के नियम 27(2)(सी) के प्रावधानों का भी हवाला दिया और तर्क दिया कि वर्तमान याचिकाकर्ताओं को आरोपों के एक ही आधार पर अलग-अलग सजा नहीं दी जा सकती थी, हांलाकि अपीलीय आदेश से पता चलता है कि बर्खास्तगी की सजा को गैर-संचयी प्रभाव के साथ वेतनमान में एक वर्ष के लिए एक वेतन वृद्धि को रोकने के प्रमुख दंड में घटा दिया गया था, जो "कोई काम नहीं तो कोई वेतन नहीं" के सिद्धांत पर ऐसी अवधि के लिए पिछले वेतन से इन्कार करता है, इसलिए, समानता के सिद्धांत को लागू करते हुए, याचिकाकर्ता जो कर्मचारियों के एक ही समूह है, उन्हें एक ही घटना से संबंधित लगभग समान आरोपों पर अलग-अलग सजा नहीं दी जा सकती थी। उन्होंने प्रस्तुत किया कि अपीलीय प्राधिकारी और पुनरीक्षण प्राधिकारी दोनों ने



याचिकाकर्ताओं के मामले पर विचार करते समय समानता के आधार पर विचार नहीं किया और सजा दी, जिसमें याचिकाकर्ताओं के साथ भेदभाव किया गया। इसलिए, याचिका स्वीकार किए जाने योग्य है।

6(i) इसके विपरीत, विद्वान राज्य अधिवक्ता ने कहा कि जहां तक विभागीय जांच का सवाल है, यह पूरी तरह से निपट चुकी है और अब याचिकाकर्ता इसे चुनौती नहीं दे सकते क्योंकि यह पहले ही रिट याचिका में निर्णीत हो चुका है, जिसमें मामले को केवल नए सिरे से निर्णय लेने के लिए अपीलीय प्राधिकारी को वापस भेजा गया था, क्योंकि अपीलीय आदेश में कोई कारण नहीं दिए गए हैं। नतीजतन, विभागीय जांच को सही माना गया लेकिन अपीलीय प्राधिकारी द्वारा सीमित जांच के लिए ही मामले को वापस भेजा गया। उन्होंने आगे कहा कि छत्तीसगढ़ सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम 1966 के नियम 27 में यह नहीं माना गया है कि समान प्रकृति की सजा नहीं दी जा सकती, क्योंकि बर्खास्तगी की सजा को प्रतिस्थापित किया गया था, जिससे पर्याप्त राहत पहले ही दी जा चुकी थी।

6(ii) उन्होंने आगे व्यक्त किया कि चूंकि प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की नियुक्ति पर आपत्ति मुकदमेबाजी के पहले दौर में नहीं उठाई गई थी, इसलिए याचिकाकर्ताओं को फिर से वापस जाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है और इस न्यायालय द्वारा पारित रिमांड आदेश के अनुसरण में, अपीलीय प्राधिकारी ने याचिकाकर्ताओं के मामले पर विचार किया है और सजा को कम कर दिया है, जिससे पर्याप्त राहत दी गई थी और याचिकाकर्ताओं को अब कोई अन्य राहत पाने का अधिकार नहीं है।

7. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्तागण को सुना तथा अभिलेखों का अवलोकन किया। जहां तक तथ्यों का संबंध है, इसमें कोई विवाद नहीं है। लगभग समान आरोपों पर दो प्रकार के पुलिस



कर्मियों को सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था। वे व्यक्ति जो पुलिस थाने में ड्यूटी पर थे, जहां याचिकाकर्ता में से एक सुभाष मरावी को बंधक बनाकर उनके हथियार लूटे गए थे, उन सभी को भारत के संविधान के अनुच्छेद 311(2)(बी) का प्रयोग करते हुए सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था। उक्त आदेश को राज्य प्रशासनिक न्यायधिकरण के समक्ष चुनौती दी गई थी। न्यायधिकरण (SAT) ने अपने आदेश दिनांक 07.03.1998 द्वारा बर्खास्तगी को खारिज कर दिया तथा उक्त पुलिस कर्मियों को बकाया वेतन के साथ बहाल करने का निर्देश दिया। SAT द्वारा पारित आदेश को इस न्यायालय की खंडपीठ ने डब्लू.पी.क्रं. 5917/1998 आदेश दिनांक 01.03.2006 द्वारा पुष्टि की एवं आगे उक्त आदेश दिनांक 01.03.2006 को सर्वोच्च न्यायालय ने एसएलपी (सिविल) क्रमांक 458/2007 (अनुलग्नक पी-1) में आदेश दिनांक 29.04.2013 द्वारा पुष्टि की। शेष व्यक्ति (वर्तमान याचिकाकर्ता) जिनके खिलाफ विभागीय जांच की गई थी, दिनांक 24.10.1997 के आदेश (अनुलग्नक पी-7) द्वारा सेवा से बर्खास्त कर दिए गए। यह पुलिस उप महानिरीक्षक, बालाघाट रेंज के समक्ष दायर विभागीय अपील में चुनौती का विषय था और उक्त अपील 30.03.1999 को खारिज हो गई। यह आगे उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती का विषय था एवं उच्च न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 08.09.2014 (अनुलग्नक पी-9) डब्लू.पी.एस. क्रं. 1825/2005 एवं अन्य संबंधित मामलों को नए सिरे से निर्णय लेने के लिए अपीलीय न्यायाधिकरण को वापस भेज दिया।

8. मुकदमेबाजी के प्रारंभिक स्तर पर, 08 सितंबर 2014 को डब्लू.पी.एस.नं. 1825/2005 और संबंधित मामलों का निपटारा करते समय, अपीलीय प्राधिकारी द्वारा दिनांक 30.03.1999 को पारित आदेशों और अन्य प्राधिकारियों की जांच की गई और *चेयरमैन, डिसीप्लीनरी अथॉरिटी, रानी लक्ष्मी बाई क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक बनाम जगदीश शरण वाष्ण्य*



(2009) 4 एस.सी.सी. 240 में निर्धारित सिद्धांतों को लागू किया गया। इस न्यायालय ने पाया कि अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश में कोई कारण नहीं है और अपीलीय प्राधिकारी द्वारा वैधानिक सेवा नियमों पर विचार किया जाना आवश्यक है। इस न्यायालय ने पैरा 22 में चेयरमैन, डिस्सिप्लीनरी अथॉरिटी, (सुप्रा) में की गई टिप्पणियों को दोहराया है जो इस प्रकार है:

"22. हाल ही में चेयरमैन, डिस्सिप्लीनरी अथॉरिटी, रानी लक्ष्मी बाई क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (सुप्रा) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:

5. हमारी राय में, पुष्टि के आदेश में उलटफेर के आदेश की तरह विस्तृत कारण शामिल करने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि पुष्टि के आदेश में कोई भी कारण शामिल नहीं होना चाहिए। वास्तव में, प्रभु दयाल ग़ोवर केस (1995) 6 एस.सी.सी. 279 में उक्त निर्णय ने स्वयं कहा है कि अपीलीय आदेश में विवेक का प्रयोग किया जाना चाहिए। विवेक का प्रयोग किया गया था या नहीं, इसका खुलासा केवल कुछ कारणों से ही किया जा सकता है, कम से कम संक्षेप में, जो अपीलीय प्राधिकारी के आदेश में उल्लिखित है। इसलिए, हम इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर सकते हैं कि पुष्टि के आदेश में कोई भी कारण शामिल करने की आवश्यकता नहीं है। उस आदेश में कुछ कारण होने चाहिए, कम से कम संक्षेप में, ताकि कोई यह जान सके कि अपीलीय प्राधिकारी ने अनुशासनात्मक प्राधिकारी के आदेश की पुष्टि करते समय अपना विवेक लगाया है या नहीं।

6. जो दृष्टिकोण हम अपना रहे हैं, वही दृष्टिकोण इस न्यायालय ने डिवि. फॉरेस्ट आफिसर बनाम मधुसूदन राव (2008) 3 एस.सी.सी. 469 एस.सी.सी. पैरा 20 जेटी पैरा 19 और एम.पी. इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम भारत संघ ए.आई.आर 1966 एस.सी. 671 सीमेंस इंजी. एंड मैनुफैक्चरिंग कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड बनाम भारत संघ (1976) 2 एस.सी.सी. 981:एआईआर 1976 एस.सी. 1785 (एस.सी.सी. पैरा 6: ए.आई.आर. पैरा 6) आदि में भी अपनाया था।

7. वर्तमान मामले में, चूंकि अपीलीय प्राधिकारी के आदेश में कोई कारण नहीं दिया गया है, इसलिए यह विवेक का प्रयोग नहीं दर्शाता है।

8. कारणों के प्रकटीकरण का उद्देश्य, जैसा कि इस न्यायालय की संविधान पीठ ने एस.एन.मुखर्जी बनाम यूनियन ऑफ





इंडिया (1990) 4 एस.सी.सी. 594 में कहा था कि लोगों को न्यायिक या अर्ध-न्यायिक प्राधिकारियों पर भरोसा होना चाहिए। जब तक कारण नहीं बताए जाते, तब तक कोई व्यक्ति कैसे जान सकता है कि अधिकारी ने अपना दिमाग लगाया है या नहीं? साथ ही, कारण बताने से मनमानी की संभावना कम हो जाती है। इसलिए, यह कानून के शासन की एक अनिवार्य आवश्यकता है कि न्यायिक या अर्ध-न्यायिक आदेश में कुछ कारण, कम से कम संक्षेप में, अवश्य बताए जाने चाहिए, भले ही वह पुष्टि का आदेश ही क्यों न हो।

9. इसमें कोई संदेह नहीं है कि एस.एन.मुखर्जी मामले (सुप्रा) में यह देखा गया है कि: (एस.सी.सी. पृष्ठ 613, पैरा 36):

"36.यदि अपीलीय या पुनरीक्षण प्राधिकारी ऐसे आदेश की पुष्टि करता है, तो उसे पृथक कारण बताने की आवश्यकता नहीं है, यदि अपीलीय या पुनरीक्षण प्राधिकारी चुनौती दिए गए आदेश में निहित कारणों से सहमत है।"

हमारी राय में, उपरोक्त अवलोकन का वास्तव में यह अर्थ है कि पुष्टि के आदेश में मूल प्राधिकारी के आदेश में निहित विस्तृत तर्क शामिल करने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं निकाला जा सकता है कि पुष्टि के आदेश में संक्षिप्त कारण भी नहीं दिए जाने चाहिए। इसके विपरीत दृष्टिकोण अपनाने का अर्थ यह होगा कि अपीलीय प्राधिकारी केवल एक-पंक्ति के आदेश द्वारा अपील को खारिज कर सकते हैं, जिसमें कहा गया हो कि वे निचले प्राधिकारी के दृष्टिकोण से सहमत हैं।

10 इसी कारण से, मद्रास राज्य बनाम श्रीनिवासन, ए.आई.आर 1966 एस.सी. 1827 (ए.आई.आर. पैरा 15) में इस न्यायालय के निर्णय को भी हमारे द्वारा उपर बताए अनुसार ही समझा जाना चाहिए।"

9. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा डब्ल्यू.पी.एस.क्र. 1825/2005 (सुप्रा) में घोषित कानून की उपरोक्त

स्थिति को लागू करते हुए इस न्यायालय ने आगे पैरा 23, 26 और 27 में अभिनिर्धारित

किया है, जो नीचे पुनः उद्धृत हैं:

"23. यदि अपीलीय प्राधिकरण और अन्य प्राधिकरणों द्वारा पारित आदेशों की जांच, अपील पर विचार करने के तरीके के बारे में वैधानिक आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए कानून के उपरोक्त सिद्धांत को लागू करके की जाती है, तो यह अपरिहार्य निष्कर्ष निकलता है कि अपीलीय प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश में कोई भी



कारण नहीं है और यह वैधानिक सेवा नियमों के अनुसार अपील पर विचार किए बिना एक यांत्रिक पुष्टि है, इस अपील में याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए विशिष्ट आधारों पर विचार करना तो दूर की बात है। इसलिए, अपीलीय प्राधिकरण और अन्य उच्च अधिकारियों द्वारा अपील में पारित आदेश की पुष्टि करने वाले आदेश कानून में टिकने योग्य नहीं है और उन्हें रद्द किया जाना चाहिए।

26. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि सजा का आदेश बहुत पहले पारित किया गया था, अपीलीय प्राधिकारी को रिट याचिका (एस) क्रमांक 1825/2005 और रिट याचिका (एस) क्रमांक 1830/2005 में याचिकाकर्ताओं की अपील का फैसला नये सिरे से, यथासंभव इस आदेश की प्राप्ति के चार माह के भीतर किए जाने के लिए निर्देशित किया जाना उचित होगा।

27. राज्य के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए इस कथन के मद्देनजर कि राज्य के पुनर्गठन के बाद, रिट याचिका (एस) क्रमांक 1825/2005 और रिट याचिका (एस) क्रमांक 1830/2005 में याचिकाकर्ताओं की अपील पर निर्णय लेने के लिए अपीलीय प्राधिकारी अब डी.आई.जी, राजनांदगांव होंगे, याचिकाकर्ताओं की अपील रिट याचिका (एस) क्रमांक 1825/2005 और रिट याचिका (एस) क्रमांक 1830/2005 में निराकृत करने के लिए डी.आई.जी राजनांदगांव को अधिकृत किया जाता है, जो कि इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश के परिपालन में अपील का निर्णय करेंगे।

10. इस न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता ने यह मुद्दा उठाया है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने विभागीय जांच स्वयं नहीं की, बल्कि इसे अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक को सौंप दिया गया और प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की नियुक्ति न होने से जांच कार्यवाही प्रभावित हुई। नियम 14 उप-नियम (5) के खंड (सी) नियम, 1966 में यह अनिवार्य किया गया है कि जब अनुशासनात्मक प्राधिकारी स्वयं किसी आरोप के भाग की जांच करता है या ऐसे आरोप की जांच करने के लिए जांच अधिकारी नियुक्त करता है, तो वह आदेश द्वारा किसी सरकारी कर्मचारी या विधि व्यवसायी को प्रस्तुतकर्ता अधिकारी के रूप में नियुक्त कर सकता है, जो आरोपों के भाग के समर्थन में मामले को अपनी ओर से प्रस्तुत करेगा। हालांकि राज्य का कहना है कि इस स्तर पर विभागीय जांच का विषय फिर से नहीं खोला जा सकता है, लेकिन





इस तरह के तर्क को बनाए रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती है, क्योंकि अपीलीय आदेश में जो तर्क दिए जाने चाहिए थे, वे गायब पाए गए, इसके अलावा प्रक्रियात्मक वैधानिक अपेक्षाओं का पालन नहीं किया गया जो प्राकृतिक न्याय के मूल सिद्धांत के विपरीत है और इसी कारण से इस मामले को इस न्यायालय ने मुकदमेबाजी के पहले दौर में वापस भेज दिया था। इसलिए, उत्तरवादी राज्य नियम 1966 के नियम 14 (5)(सी) के प्रावधानों के तहत पूर्ण किए जाने वाले वैधानिक दायित्व को अनदेखा नहीं कर सकता है। इस नियम की व्याख्या सुप्रीम कोर्ट ने यूनियन ऑफ इंडिया थ्रू इट्स सेक्रेटरी मिनिस्ट्री ऑफ रेलवे, नई दिल्ली बनाम मोहम्मद नसीम सिद्दीकी (2005) 1 LLJ 931 पैरा 7 में की है, जिसके अनुसार न्यायालय द्वारा निम्नानुसार अवधारित किया गया है:

"7. प्राकृतिक न्याय के मूलभूत सिद्धांतों में से एक यह है कि कोई भी व्यक्ति अपने मामले में न्यायाधीश नहीं बन सकता। इस सिद्धांत में सात अच्छी तरह से पहचाने जाने वाले पहलू शामिल हैं: (i) निर्णायक निष्पक्ष और पक्षपात से मुक्त होगा, (ii) निर्णायक अभियोजक नहीं होगा, (iii) शिकायतकर्ता निर्णायक नहीं होगा, (iv) कोई गवाह निर्णायक नहीं हो सकता, (v) निर्णायक को आरोपों की जांच करते समय मामले के तथ्यों के बारे में अपने व्यक्तिगत ज्ञान का उपयोग नहीं करना चाहिए, (vi) निर्णायक अपने वरिष्ठों या अन्य लोगों के निर्देशों पर निर्णय नहीं लेगा, (vii) निर्णायक रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के संदर्भ में मुद्दे का फैसला करेगा, न कि बाहरी सामग्री या बाहरी विचारों के संदर्भ में। यदि इन मूलभूत नियमों में से किसी एक का उल्लंघन किया जाता है, तो जांच को निष्फल कर दिया जाएगा।

इसके अलावा, पैराग्राफ 16 में, माननीय न्यायाधीशों ने कानूनी स्थिति का अवलोकन करके निम्नलिखित सारांश दिया:

(i) जांच अधिकारी, जो न्यायाधीश की स्थिति में है, प्रस्तुतकर्ता अधिकारी के रूप में कार्य नहीं करेगा, जो अभियोजक की स्थिति में है।



(ii) अनुशासनात्मक प्राधिकारी के लिए प्रत्येक जांच में एक प्रस्तुतकर्ता अधिकारी नियुक्त करना आवश्यक नहीं है। प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की नियुक्ति न होने से, अपने आप में जांच को अमान्य नहीं माना जाएगा।

(iii) जांच, अधिकारी सत्य तक पहुंचने या स्पष्टीकरण प्राप्त करने के उद्देश्य से अभियोजन पक्ष के गवाहों और बचाव पक्ष के गवाहों से भी प्रश्न पूछ सकता है। प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की अनुपस्थिति में, यदि जांच अधिकारी तथ्यों को जानने के लिए अभियोजन पक्ष के गवाहों से कोई प्रश्न पूछता है, तो उसे उसके बाद दोषी कर्मचारी को उन स्पष्टीकरणों पर ऐसे गवाहों से प्रतिपरीक्षण करने की अनुमति देनी चाहिए।

(iv) यदि जांच अधिकारी अभियोजन पक्ष के मामले में अभियोजन पक्ष के साक्षियों को आगे ले जाकर नियमित रूप से मुख्य परीक्षण करता है, या बचाव पक्ष के साक्षियों से उत्तर सहित महत्वपूर्ण प्रश्न पूछता है, या बचाव पक्ष के साक्षियों से प्रतिपरीक्षण करता है या अभियोजन पक्ष के मामले में अपना पक्ष स्थापित करने के लिए सुझावात्मक प्रश्न पूछता है, तो जांच अधिकारी अभियोजक के रूप में कार्य करता है, जिससे जांच दूषित होती है।

(v) चूंकि प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की अनुपस्थिति अपने आप में जांच को निष्प्रभावी नहीं करेगी और यह माना जाता है कि जांच अधिकारी सत्य को उजागर करने के लिए किसी भी या सभी साक्षियों से प्रश्न पूछ सकता है, इसलिए यह प्रश्न कि क्या जांच अधिकारी ने प्रस्तुतकर्ता अधिकारी के रूप में कार्य किया है, इस बात के संदर्भ में निर्णय लिया जाएगा कि किस प्रकार साक्ष्य को जांच में शामिल किया गया और अभिलिखित किया गया।

जांच अधिकारी ने केवल जांच अधिकारी के रूप में ही काम किया है या प्रस्तुतकर्ता अधिकारी के रूप में भी काम किया है, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है। पक्षपात के किसी भी आरोप से बचने और जांच के अवैध घोषित या दूषित होने के जोखिम से बचने के लिए, वर्तमान प्रवृत्ति हमेशा प्रस्तुतकर्ता अधिकारियों की नियुक्ति करने की प्रतीत होती है, सिवाय साधारण मामलों के चाहें जो भी हो।

(जोर दिया गया)

11. इसी प्रकार का विचार सर्वोच्च न्यायालय ने **मोनी शंकर बनाम भारत संघ (2008) 3**

एस.सी.सी. 484 में व्यक्त किया था, जिसमें पैरा 30 में निम्नलिखित अवधारित किया गया

था:





"30. उपर्युक्त उद्देश्य के लिए, जिस तरीके से जांच कार्यवाही की गई थी, उसे उच्च न्यायालय द्वारा ध्यान में रखा जाना आवश्यक था। मैनुअल के शर्तों के अनुसार पकड़ने की कार्यवाही नहीं किया गया था; जांच अधिकारी ने एक अभियोजक के रूप में कार्य किया, न कि एक स्वतंत्र अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण के रूप में; उन्होंने नियमों के नियम 9(21) का अनुपालन नहीं किया, इसलिए जाहिर है, यह ऐसा मामला नहीं था, जहां न्यायाधिकरण के आदेश में उच्च न्यायालय के हस्तक्षेप की आवश्यकता थी।"

12. सर्वोच्च न्यायालय ने **उत्तरांचल राज्य एवं अन्य बनाम खड़क सिंह (2008) 8 एस.सी.सी.**

236 मामले में पुनः इसी प्रकार की स्थिति पर विचार किया था और पैराग्राफ-17 में

निम्नानुसार अवधारित किया था:

"17. दूसरी ओर, श्री पी.सी.लोहानी, उप प्रभागीय वन अधिकारी, नंदौर ने जांच अधिकारी के रूप में कार्य करते हुए कुछ प्रश्न पूछे और उत्तर प्राप्त करने के बाद 16.11.1985 को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की। किसी गवाह की जांच नहीं की गई। जाहिर है, वहां कोई प्रस्तुतकर्ता अधिकारी भी नहीं था। रिपोर्ट के अवलोकन से पता चलता है कि जांच अधिकारी ने स्वयं वन क्षेत्र का निरीक्षण किया और कुछ कथित कमियों को ध्यान में रखते हुए कुछ प्रश्न पूछकर अपराधी से कुछ उत्तर प्राप्त किए। यह स्पष्ट है कि जांच अधिकारी ने स्वयं ही जांचकर्ता, अभियोजक और न्यायाधीश के रूप में कार्य किया है। इस तरह की प्रक्रिया प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के विपरीत है और इस न्यायालय द्वारा इसका विरोध किया गया है।"

(जोर दिया गया)

13. एक अन्य मामले में, अर्थात् **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा (2010) 2**

एस.सी.सी. 772 में रिपोर्ट किया गया, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ 27 से 30 में

निम्नानुसार अवधारित किया:

"27.....लेकिन फिर भी आरोपों को साबित करने के लिए विभाग को सबूत पेश करने की आवश्यकता है। जांच अधिकारी के समक्ष आवश्यक साक्ष्य प्रस्तुत करने से बचना चाहिए। ऐसा इसलिए किया जाता है ताकि यह आरोप न लगे कि जांच अधिकारी ने अभियोजक के साथ-साथ न्यायाधीश की भूमिका भी निभाई है।



28. अर्ध न्यायिक प्राधिकरण में कार्यरत जांच अधिकारी स्वतंत्र निर्णायक की स्थिति में होता है। उसे विभाग/अनुशासनात्मक प्राधिकरण/सरकार का प्रतिनिधि नहीं माना जाता है। उसका कार्य विभाग द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की जांच करना है, यहां तक कि दोषी अधिकारी की अनुपस्थिति में भी यह देखना है कि क्या आरोपों को साबित करने के लिए अखंडित साक्ष्य पर्याप्त है। वर्तमान मामले में उपर्युक्त प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है। चूंकि मौखिक साक्ष्य की जांच नहीं की गई है, इसलिए दस्तावेज साबित नहीं हुए हैं, और यह निष्कर्ष निकालने के लिए उन पर विचार नहीं किया जा सकता था कि प्रतिवादियों के खिलाफ आरोप साबित हो गए हैं।

29. उपरोक्त के अलावा, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 311(2) के अनुसार विभागीय जांच प्राकृतिक न्याय के नियमों के अनुसार की जानी चाहिए। प्राकृतिक न्याय के नियमों की यह बुनियादी आवश्यकता है कि किसी भी कार्यवाही में कर्मचारी को सुनवाई का उचित अवसर दिया जाना चाहिए, जिसके परिणामस्वरूप कर्मचारी को सजा दी जा सकती है।

30. जब सरकारी कर्मचारी के विरुद्ध विभागीय जांच की जाती है, तो इसे एक आकिस्मिक अभ्यास नहीं माना जा सकता है। जांच कार्यवाही भी बंद दिमाग से नहीं की जा सकती है। जांच अधिकारी को पूरी तरह से निष्पक्ष होना चाहिए। प्राकृतिक न्याय के नियमों का पालन न केवल यह सुनिश्चित करने के लिए किया जाना चाहिए कि न्याय किया जाए बल्कि यह भी सुनिश्चित किया जाए कि न्याय किया जा रहा है कि सरकारी कर्मचारी के साथ कार्यवाही में निष्पक्ष व्यवहार किया जाए, जिसके परिणामस्वरूप उसे सेवा से बर्खास्त/हटाने सहित दंड दिया जा सकता है।"

(जोर दिया गया)

14. उपर्युक्त निर्णयों में निर्धारित सिद्धांत वर्तमान मामले के तथ्यों पर पूरी तरह लागू होंगे। जब उत्तरवादियों द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया वैधानिक आवश्यकता को पूरा करने में विफल हो जाती है, तो कानून के विरुद्ध कोई काल्पनिकता या रोक नहीं लगाई जा सकती। उस मुद्दे के अलावा, दूसरा पहलू जो मामले की जड़ में जाता है, वह यह है कि उसी घटना में सम्मिलित कर्मचारियों के एक अन्य समूह को सभी बकाया वेतन के साथ बहाल कर दिया गया था, जबकि इन याचिकाकर्ताओं के लिए अपवाद बनाया गया था। घटना एक ही थी और सभी के





लिए समान थी, जिसमें लगभग एक जैसे आरोप लगाए गए थे। इस तथ्य के बावजूद कि उन्हें केवल इस कारण से बहाल किया गया था कि बिना किसी विभागीय जांच के उन्हें बर्खास्त कर दिया गया था, इस परिषद के समक्ष रिकॉर्ड पर ऐसा कुछ भी नहीं है, जिससे यह समझा जा सके कि बहाली के बाद आगे कोई जांच की गई थी, क्योंकि राज्य उचित समय के भीतर ऐसा करने के लिए स्वतंत्र था। जब कर्मचारियों के दो समूह समान आरोपों के साथ एक ही आधार पर न्यायालय के समक्ष आते हैं, तो क्या इस तरह का विभेद किया जा सकता है। इसका

उत्तर **सर्वोच्च न्यायालय ने टाटा इंजीनियरिंग एंड लोकोमोटिव कंपनी लिमिटेड बनाम जितेंद्र**

पीडी सिंह (2001) 10 एस.सी.सी. 530 में दिया है। इस मामले में, न्यायालय ने माना कि

ऐसी परिस्थितियों में भले ही उन्हें अलग-अलग कार्यवाही में दोषी पाया गया हो, बर्खास्तगी

की तीसरी सजा को अलग करना संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघन होगा। निर्णय

के पैरा 2 का प्रासंगिक भाग नीचे उद्धृत किया गया है:

"2. जांच होने पर, जांच अधिकारी ने यह पाया कि कदाचार का आरोप सिद्ध हो गया है और जांच अधिकारी की रिपोर्ट तथा अन्य सुसंगत सामग्री पर विचार करने के बाद अनुशासनिक अधिकारी ने प्रथम प्रतिवादी को सेवा से बर्खास्त कर दिया है। इसके बाद, प्रथम प्रतिवादी की ओर से श्रम न्यायालय को एक संदर्भ दिया गया। श्रम न्यायालय ने हालांकि इस प्रारंभिक प्रश्न पर कि प्रथम प्रतिवादी के विरुद्ध की गई अनुशासनात्मक जांच वैध है, अभिलेख पर मौजूद दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्यों को देखते हुए निष्कर्ष निकाला कि बर्खास्तगी न्यायोचित नहीं थी और यह माना कि वह सेवा में निरंतरता और अन्य परिणामी लाभों के साथ पूर्ण पिछले वेतन के साथ बहाली का हकदार था। न्यायालय में एक रिट याचिका दायर की गई, जिसे स्वीकार कर लिया गया, लेकिन कुछ प्रस्तावों के आधार पर विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह भी निर्देश दिया कि अपीलकर्ता को बर्खास्तगी की तिथि से आदेश की तिथि तक प्रथम प्रतिवादी को 50,000 रुपये की एकमुश्त राशि का वेतन दिया जाएगा। इसके बाद प्रबंधन और कर्मचारी दोनों ने दो अपील दायर की। अपील में कई सवाल उठाए गए थे कि क्या प्रथम प्रतिवादी द्वारा किया गया कार्य



कदाचार के बराबर होगा, जिसके लिए प्रबंधन के कहने पर अनुशासनात्मक जांच की आवश्यकता होती है और अंततः उसे बर्खास्त कर दिया जाता है; **ग्लेक्सो लेबोरेटरीज (1) लिमिटेड बनाम पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, मध्यप्रदेश (1984)1 एस.सी.सी.1:1984 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 42** पर मजबूत भरोसा किया गया था। अंततः, हालांकि दो न्यायाधीश इस मामले के एक पहलू पर सहमत थे कि प्रश्न, कि क्या कार्य के कारण कदाचार के कारण कदाचार और कमचारी के रोजगार के बीच अनौपचारिक संबंध होना चाहिए था, इस प्रश्न का अधिक महत्व नहीं हो सकता है, जब ऐसे कार्य कारखाने के परिसर के भीतर हुए हों, तो मामले में उपयुक्त फैसला किया जाना चाहिए। इस मामले पर निर्णय लेने में न्यायालय को प्रभावित करने वाले कारक निम्नलिखित हैं:

"चूंकि एक ही घटना के संबंध में लगभग समान आरोपों पर तीन कामगारों को कदाचार का दोषी पाया गया था, यद्यपि अलग-अलग कार्यवाहियों में, और एक को केवल एक महीने के निलंबन के साथ दंडित किया गया था, और दूसरे को श्रम न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों और उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि के मद्देनजर अंततः बहाल कर दिया गया था, यह अपीलकर्ता के साथ न्याय से इन्कार होगा, यदि उसे सेवा से बर्खास्तगी के रूप में दंडित किया जाता है।"

15. इसके अलावा, **रेजेन्द्र यादव बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2013)3 एस.सी.सी. 73** में सर्वोच्च न्यायालय ने इसी तरह की स्थिति से निपटने के दौरान समानता के सिद्धांत को आगे बढ़ाया और माना कि यह उन सभी लोगों पर लागू होता है, जो समान स्थिति में हैं, यहां तक कि उन व्यक्तियों में भी जो दोषी पाए जाते हैं। न्यायालय ने आगे कहा कि दोषी पाए गए व्यक्ति भी समानता के सिद्धांत का दावा कर सकते हैं, यदि वे सजा लगाने में भेदभाव स्थापित कर सकते हैं, जब वे सभी एक ही घटना में शामिल हैं। पैरा 9, 10 और 11 प्रासंगिक हैं और नीचे पुनः प्रस्तुत किए गए हैं:

"9. समानता का सिद्धांत उन सभी पर लागू होता है, जो समान स्थिति में हैं: यहां तक कि उन व्यक्तियों पर भी जो दोषी पाए जाते हैं। दोषी पाए गए व्यक्ति भी व्यवहार की समानता का दावा कर सकते हैं, यदि वे दंड लगाते समय भेदभाव स्थापित कर सकते हैं,





जब वे सभी एक ही घटना में शामिल हों। दंड लगाते समय सह-अपराधियों के बीच समानता भी बनाए रखी जानी चाहिए। एक ही लेन-देन या घटना में सह-अपराधियों की भागीदारी की तुलना करते समय दंड असंगत नहीं होना चाहिए। अनुशासनात्मक प्राधिकारी ऐसा दंड नहीं लगा सकता जो अनुपातहीन हो गंभीर अपराधों के लिए कम दंड और कम अपराधों के लिए कठोर दंड।

10. उपर बताए गए सिद्धांत को इस न्यायालय के कुछ निर्णयों में लागू होते देखा गया है। सबसे पहला निर्णय डीजी ऑफ पुलिस बनाम दसायन (1998)2 एस.सी.सी. 407 है, जिसमें दसायन नामक एक पुलिस कांस्टेबल, दो अन्य कांस्टेबल और एक अन्य कांस्टेबल शामिल है। हेड कांस्टेबल पर भी इसी तरह के कदाचार के आरोप लगाए गए थे। अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने दो अन्य कांस्टेबलों को दोषमुक्त कर दिया, लेकिन दसायन को सेवा में बर्खास्त करने और हेड कांस्टेबल को अनिवार्य सेवानिवृत्ति की सजा सुनाई। इस न्यायालय ने न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए, दसायन को सेवा से बर्खास्त करने के आदेश के स्थान पर अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश दिया, जिसमें सह-अपराधियों के बीच सजा में समानता के सिद्धांत को लागू किया गया। इस न्यायालय ने माना कि अन्यथा यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन कर सकता है।

11. आनंद रेजी. को. ऑयल सीड्स ग्रोवर्स यूनियन लिमिटेड शैलेश कुमार हर्षदभाई शाह केस (2006) 6 एस.सी.सी. 548 में, कर्मचारी को साबित कदाचार के लिए सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था। हांलाकि, कुछ अन्य कर्मचारियों, जिन पर फिर से समान आरोप थे, को स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना का लाभ उठाने की अनुमति दी गई थी। ऐसी परिस्थितियों में, इस न्यायालय ने निर्देश दिया कि कर्मचारी के साथ भी उसी स्तर पर व्यवहार किया जाए और उसे उसी महीने से सेवा से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति का लाभ दिया जाए, जिस महीने अन्य को लाभ दिया गया था।

12. हमारा मानना है कि उपर्युक्त निर्णयों में निर्धारित सिद्धांत वर्तमान मामले के तथ्यों पर पूरी तरह लागू होंगे। हम पहले ही संकेत दे चुके हैं कि सह-अपराधी अर्जुन पाठक पर तुलनात्मक रूप से हल्की सजा लगाने और साथ ही अपीलकर्ता पर कठोर सजा देने की अनुशासनात्मक प्राधिकारी की कार्रवाई कानून में अनुमति नहीं दी जा सकती, क्योंकि वे सभी एक ही घटना में शामिल थे। नतीजतन, हम अपीलकर्ता पर लगाए गए सेवा से बर्खास्तगी के दंड को अलग करके अपील को स्वीकार करने के लिए इच्छुक है और आदेश देते हैं कि उसे तुरंत सेवा में बहाल किया जाए। इसलिए, अपीलकर्ता को उस तारीख से बहाल किया जाना चाहिए, जिस दिन





अर्जुन पाठक को बहाल किया गया था और उसे सभी परिणामी लाभ दिए जाने चाहिए जो अर्जुन पाठक को दिए गए थे। तदनुसार आदेश दिया जाता है। हालांकि, लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।"

(जोर दिया गया)

16. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित कानून की उपरोक्त स्थिति को देखते हुए, अपीलीय न्यायालय के आदेश (अनुलग्नक पी-1) से प्रथम दृष्टया पता चलता है कि यह सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित इन सिद्धांतों पर ध्यान देने में विफल रहा है और अलग-अलग आदेश पारित किए गए हैं। याचिकाकर्ताओं को 24.10.1997 को बर्खास्त कर दिया गया था और यद्यपि उन्हें अपीलीय आदेश द्वारा बहाल कर दिया गया था, लेकिन आंशिक राहत दी गई थी, जिसे चुनौती दी गई है।

17. वर्तमान मामले के तथ्यों पर समानता के सिद्धांत को लागू करते हुए, यह न्यायालय इस विचार पर है कि समान स्थिति वाले याचिकाकर्ता भी पिछले वेतन के साथ बहाली के हकदार हैं, जैसा कि उसी घटना में शामिल अन्य व्यक्तियों के मामले में आदेश दिया गया था।

18. उपर्युक्त कारणों से, याचिका स्वीकार की जाती है। अनुलग्नक पी-1 के तहत बकाया वेतन न दिए जाने तथा मूल वेतन में एक वेतन वृद्धि रोके जाने के प्रमुख दंड को गैर संचयी प्रभाव से रद्द किया जाता है। याचिकाकर्ता बकाया वेतन के साथ बहाली के हकदार हैं। परिणामस्वरूप, 10.03.2016 को समीक्षा/दया याचिका में डीजीपी द्वारा पारित आदेश (अनुलग्नक -2) भी अपास्त किया जाता है।

सही/-

(गौतम भादुड़ी)
न्यायाधीश



रिट पिटीशन नं. 1227 ऑफ 2016

(सुरेन्द्र रामटेके व अन्य बनाम छत्तीसगढ़ राज्य व अन्य)

HEAD-NOTES

(1) In certain cases of like nature, if the Enquiry Officer assumes the role of presenting officer it gives rise to reasonable apprehension of bias and risk of inquiry being declared illegal or vitiated.

समान प्रकृति के कुछ मामलों में, यदि जाँचकर्ता अधिकारी प्रस्तुतकर्ता अधिकारी की भूमिका निभाता है, तो यह पक्षपात की उचित आशंका और जाँच को अवैध या दूषित घोषित किए जाने के जोखिम को जन्म देता है।

(2) By virtue of Article 311(2) of the Constitution of India, the departmental inquiry has to be conducted in accordance with fundamental principles of natural justice which requires opportunity of hearing to the delinquent.

भारत के संविधान के अनुच्छेद 311(2) के अनुसार विभागीय जाँच प्राकृतिक न्याय के मूलभूत सिद्धांतों के अनुसार की जानी चाहिए, जिसमें अपचरी को सुनवाई का अवसर प्रदान किया जाना आवश्यक है।

(3) When the charges arise from the same incident and allegations are almost identical, doctrine of equality would apply in imposing punishment and similarly placed co-delinquents cannot be visited with different punishment.

जब आरोप एक ही घटना से उत्पन्न हुआ हो एवं आरोप लगभग एक समान हो, तो दंड अधिरोपित करने के संबंध में समानता का सिद्धांत लागू होगा एवं समान सह-अपचारियों को अलग दंड नहीं दिया जा सकता।



(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण: हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा । समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेजी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।

